



ये हैं बुन्देलखण्ड

भाग-तीन



संपादक
लक्ष्मी पाण्डेय



परामर्श
सुरेश आचार्य

ये है बुन्देलखण्ड

भाग-तीन

सम्पादक

लक्ष्मी पाण्डेय

परामर्श

सुरेश आचार्य





वैधानिक चेतावनी
पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन, फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक व प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित आलेख/आलेखों के सर्वाधिकार मूल रचनाकार/रचनाकारों के पास सुरक्षित हैं। पुस्तक में व्यक्त विचार पूर्णतया लेखक/लेखकों अथवा सम्पादक/सम्पादकों के हैं। यह जरूरी नहीं है कि प्रकाशक इन विचारों से पूर्ण या आंशिक रूप से सहमति रखे। किसी भी विवाद के लिए न्यायालय दिल्ली ही मान्य होगा।

© डॉ. लक्ष्मी पाण्डेय

प्रथम संस्करण : 2020

ISBN 978-93-89341-79-9

प्रकाशक

अनुज्ञा बुक्स

1/10206, लेन नं. 1E, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110 032

e-mail : anuugyabooks@gmail.com • salesanuugyabooks@gmail.com

फोन : 011-22825424, 09350809192

www : anuugyabooks.com

मूल्य : 900 रुपये

आवरण

असरार अहमद, सागर

मुद्रक

अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32

YE HAI BUNDELKHAND (Part-III) edited by Dr. Laxmi Pandey

अनुक्रम

- 5 डॉ. सुरेश आचार्य यह गौर बब्बा के प्रति श्रद्धांजलि है...
- 11 लक्ष्मी पाण्डेय सम्पादकीय
- ‘अ’ – ललितपुर, झाँसी, दतिया, जालौन
- 27 अयोध्या प्रसाद गुप्त ‘कुमुद’ बुन्देलखण्ड का प्रवेश-द्वार : जिला जालौन
- 41 डॉ. सीता किशोर दतिया की बोली में इतिहास लिखने की परम्परा
- 46 डॉ. कामिनी दतिया जिले का इतिहास
- 53 डॉ. अवध बिहारी पाठक दतिया जिले के साहित्यकार
- 60 डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला दतिया जिले के धार्मिक एवं पर्यटन स्थल
- 84 राकेश कुमार श्रीवास्तव दतिया की पत्रकारिता : अतीत से वर्तमान तक
- 92 डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव बुन्देला स्थापत्य का अद्भुत नमूना :
कन्हरगढ़ दुर्ग
- 98 अमित कुमार खरे प्रकृति एवं अध्यात्म का संगम :
प्राचीन नगर सेवड़ा
- 103 रामप्रकाश गुप्त ऐतिहासिक नगर : भांडेर
- 108 डॉ. राज गोस्वामी दतिया का प्राचीन सूर्य मन्दिर : उन्नाव (बालाजी)
- 116 डॉ. राज गोस्वामी पीताम्बरा पीठ : दतिया
- 119 डॉ. राज गोस्वामी दतिया का विश्वविजेता : गामा
- 122 पं. बाबूलाल द्विवेदी इतिहास और जनश्रुतियों के आलोक में :
नगर ललितपुर
- 128 डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी मुड़ मुड़ के देखता हूँ... जनपद ललितपुर
- 149 लक्ष्मी पाण्डेय मऊरानीपुर : ऐतिहासिक नगर
- 151 डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी ललितपुर जनपद का साहित्यिक परिचय
- 155 घनश्याम मैथिल ‘अमृत’ अथ-श्री तालवेहट कथा...!!
- 162 रामप्रकाश गुप्ता झाँसी जिले के दर्शनीय पर्यटन स्थल
- 174 हरगोविन्द कुशवाहा बुन्देली फागों के पर्याय : लोक कवि ईसुरी

- 179 डॉ. विजयलक्ष्मी राय बुन्देलखण्ड के साहित्य रत्न
मैथिलीशरण गुप्त : सियारामशरण गुप्त
- 189 निर्मला डोसी चन्देरी साड़ी बुनाई
- 194 डॉ. हरिसिंह पाल सौन्दर्य और समृद्धि की नगरी चन्देरी
- 197 अभिषेक दांगी चन्देरी के रत्न : बैजू बावरा*
- * 'ये है बुन्देलखण्ड' भाग-तीन में लेखों की संख्या अधिक होने के कारण शिवपुरी पर केन्द्रित लेख 'ये है बुन्देलखण्ड' भाग-चार के खण्ड 'अ' में प्रकाशित किए गए हैं।

'ब' - बुन्देलखण्ड

- 201 श्री घासीराम जी व्यास वर वन्दनीय बुन्देलखण्ड
- 203 डॉ. एम. एस. अवास्या बुन्देलखण्ड का साँस्कृतिक वैभव
(आरम्भ से 12 शताब्दी ईसवी तक)
- 217 के. एल. जैन बुन्देलखण्ड में जैनाचार्यों और मुनियों की भूमिका
- 229 श्रीमती चन्द्रा नेमा बुन्देलखण्ड के व्यंजन
- 235 डॉ. रूपाली सैनी बुन्देलखण्ड में उद्योगों के विकास की गति
- 245 डॉ. अवधेश कुमार बुन्देलखण्ड के लोक-रंग
- 258 डॉ. लक्ष्मी पाण्डेय बुन्देलखण्ड : संस्कार गीतों में संस्कृति
- 273 कु. साधना यादव बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध अभयारण्य
- 279 ज्योति गिरि बुन्देलखण्ड की भक्ति-काव्य परम्परा
- 289 डॉ. प्रदीप कुमार पुरा सम्पदा की थाती हैं बुन्देलखण्ड के संग्रहालय

'स' - पूर्वजों के कोठार से

- 307 श्री चन्द्रभानु विशारद वाल्मीकि-आश्रम
- 309 श्री रामचरणलाल हयारण 'मित्र' हमारे एक अज्ञात कवि - 'जुगलेश'
- 311 स्व. श्री कृष्णबल्देव वर्मा महाराज छत्रसाल
- 318 श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' बुन्देलखण्ड की साहित्यिक संस्थाएँ
- 324 श्री कैलाशनाथ प्रियदर्शी हिन्दी साहित्य संघ, उरई
- 326 श्री हरगोविन्द गुप्त चिरगाँव की साहित्यिक संस्थाएँ
- 328 श्री राधाचरण गोस्वामी बिजावर राज्य के दर्शनीय स्थल
- 336 साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय
- 339 'ये है बुन्देलखण्ड' के भाग-एक, दो और चार के लेखों के अनुक्रम की सूचियाँ

बुन्देलखण्ड के लोक-रंग

डॉ. अवधेश कुमार

बुन्देलखण्ड की मिट्टी में अभी भी पुरातन संस्कृति और परम्पराओं की महक रची-बसी है। भारत देश के मध्य में विन्ध्य की ऊँची-नीची पहाड़ियों से आच्छादित भू-भाग 'बुन्देलखण्ड' के नाम से जाना जाता है। चूँकि यह स्थान प्राचीन काल से अनेक शासकों के अधीन रहा है, इसलिए इसके नाम भी समय-समय पर बदलते रहे हैं। पुराण काल में इस प्राकृतिक प्रदेश को 'जेजाकभुक्ति', 'चेदि' एवं 'डाहल' जनपद के नाम से अभिहित किया गया। साथ ही यह प्रदेश दस नदियों वाला देश होने के कारण इसे लोक में 'दशार्ण' प्रदेश के नाम से भी जाना जाता है। इसके अलावा विन्ध्य पर्वत की श्रेणियों से आवेष्टित होने के कारण यह भूमि 'विन्ध्यभूमि' भी कहलाई। इतिहास में चन्देलों के समय इस क्षेत्र का नाम 'जुझौतिया' था। पंचम सिंह विन्ध्येला के वंशजों ने जब इस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, तब इसका नामकरण 'बुन्देलखण्ड' हो गया। विशेष भौगोलिक क्षेत्र और संस्कृति के कारण इसकी अपनी विशिष्ट बोली और साहित्य है। 'बुन्देली' इस क्षेत्र की प्रमुख बोली और भाषा भी है, जो हिन्दी साहित्य-जगत में खूब प्रचलित है। रामायण काल में वामदेव, अत्रि, अगस्त्य, सरभंग, मतंग, वाल्मीकि आदि ऋषियों के आश्रम इस प्रदेश में रहे हैं। 'महाभारत' के रचयिता वेदव्यास तथा 'राम' के चरित को उद्घाटित करने वाले हिन्दी के महान कवि विष्णुदास और तुलसीदास आदि कवि इसी धरा की अनुपम देन हैं।

बुन्देलखण्ड का कुछ भाग उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के कुछ भागों में बँटा हुआ है, जिसमें झाँसी, हमीरपुर, बाँदा, जालौन, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, चरखारी, दतिया, विजावर, अजयगढ़ तथा सागर, दमोह आदि जिले हैं। प्राकृतिक वैभव, प्राचीन वास्तुकला, अपार खनिज-सम्पदा एवं प्रचुर साहित्य साधना की दृष्टि से बुन्देलखण्ड की गरिमा अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा यह अपनी प्राकृतिक संरचना, भाषा, संस्कृति, साहित्य, रीति-रिवाज और लोक-व्यवहार में ऐसा है, जिसकी लोक में एक अलग पहचान है।

बुन्देली लोक-संस्कृति

भारतीय लोक-संस्कृति आदिकाल से ही समृद्ध रही है, जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति का अपना अनूठा रंग है। “लोक-संस्कृति किसी देश की सभ्यता का दर्पण है। अर्थात् किसी देश के निवासियों की लोक-संस्कृति तभी भली-भाँति जानी जा सकती है, जब उनकी सभ्यता का पूरा ज्ञान हो।”² बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति यहाँ के जनजीवन में प्राणवायु के समान ही लोगों के हृदय में बसती चली आ रही है और यह समूचे लोक-जीवन को समृद्धि भी प्रदान करती आ रही है।

बुन्देली संस्कृति में एक संकल्प है, जो जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की क्रियाओं को विशिष्ट ढंग से संचालित करती है। यानी यहाँ की लोक-समृद्धि का आधार यहाँ की लोक-संस्कृति है, जिसमें यहाँ का समूचा बुन्देली समाज पल्लवित, पुष्पित और विकसित होता है। इसकी पुरातन संस्कृतियों से ही व्यक्ति, परिवार और समाज पीढ़ी-दर-पीढ़ी फूलता-फलता चला आ रहा है। बुन्देली लोक-संस्कृति बेहद अनूठी और सौन्दर्यमयी है।

बुन्देली लोक-संस्कृति मानवीयता का अनुपम दस्तावेज है। इसके लोक-जीवन के साँस्कृतिक पक्ष में लोक-संगीत, लोकगीत, लोक-नृत्य, लोकवाद्य, लोक-कथाएँ, लोकगाथाएँ, बुझौअल, पहेली, लोकोक्तियाँ, रीति-रिवाज, पर्व उत्सव, व्रत-पूजन, अनुष्ठान, लोक-देवता, ग्रामदेवता, मेले आदि का समावेश है। बुन्देली संस्कृति का अनुशीलन किया जाए तो हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड का जनजीवन सामान्यतः कृषि पर ही आधारित है। बुन्देलखण्ड के शहरी संस्कारों पर भी किसान संस्कृति की पूरी झलक दिखाई पड़ती है। यह संस्कृति गुफाओं में प्राचीन आदिमानव के शैलचित्रों की संस्कृति के अध्ययन से प्रारम्भ होकर आधुनिक बुन्देली संस्कृति के आँचल में दिखाई देती है। रूढ़िवादी बाह्य आडम्बरों की प्रधानता होते हुए भी साँस्कृतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड अत्यधिक समृद्ध और सम्पन्न है। एक ओर अनेक परम्पराएँ यहाँ के जन-समाज को आदर्शों से बाँधती हैं, तो दूसरी ओर कठिन श्रम को जीवन का आधार भी बताती हैं। अपनी आन-बान को निभाने में बुन्देलीजन अपना सर्वस्व न्यौछावर करने से पीछे नहीं हटते। गोया कि यहाँ की संस्कृति ईमानदारी और निष्ठा पर टिकी हुई है। इस अर्थ में सचमुच बुन्देली किसान संस्कृति में लोक-संस्कृति का अधिक महत्व है। किसान संस्कृति में लोकगीतों का जन्म श्रम से उत्पन्न थकान को कम करने के लिए हुआ। किसान का

जीवन अधिक श्रमशील जीवन है और इनके खेती-किसानी से जुड़े विभिन्न कार्यों के लिए लोकगीत हैं, जो इन्हें संस्कारित करते रहते हैं। लोक-जीवन का सर्वश्रेष्ठ सजीव रूप किसान संस्कृति में दिखाई पड़ता है और लोकगीतों का यह संस्कार उन्हें अपने कार्य को अधिक तल्लीनता और आनन्द से करने के लिए प्रेरित करता है।

बुन्देली लोक-संस्कृति में कला, साहित्य और अध्यात्म का संस्कार गहरे स्तर तक छाया हुआ है। “बुन्देली जन-जीवन में चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला, संगीत कला और साहित्य आदि कलाएँ प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। विभिन्न त्योहारों पर चौक पूरने (अल्पना बनाने) का विधान है। त्योहारों पर सतिया (स्वास्तिक) एवं देवी-देवताओं के चित्र बनाना यथा नागपंचमी पर नाग के चित्र बनाकर पूजा, महालक्ष्मी में मिट्टी के हाथी की पूजा, गणेशोत्सव में गोबर के गणेश जी की पूजा और दशहरा में काली जी की पूजा, देवउठनी एकादशी में ग्वालिन की पूजा, अन्नकूट में गोबर के गोवर्धन की पूजा तथा देवउठनी एकादशी पर सुई से जमीन पर सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु के चरण आदि के चित्र बनाकर पूजा करना बुन्देली जन की कलाप्रियता का परिचायक है।”⁶ इन अवसरों पर इनको मेवा-मिठाई की अल्प उपलब्धता के चलते वे महुआ, बेर, गुनगुच, सीताफल आदि प्रकृति द्वारा दिए गए जंगली फलों को खाकर इसकी पूर्ति करते हैं। बुन्देली कहावत भी है कि, ‘महुआ मेवा बेर कलेवा, गुनगुच बड़ी मिठाई।’

बुन्देली लोक-संस्कृति में वैदिक परम्परा के सोलहों संस्कारों के तत्त्व विद्यमान हैं, लेकिन वे इसे बेहद सादगी के साथ निर्वहन करते हैं। इस संस्कृति में मुंडन, कर्णछेदन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों के अलावा नैतिक मूल्यों का नवीन प्रादुर्भाव देखने को मिलता है, जिसमें प्रकृति-प्रेम, देश-प्रेम, दया, करुणा, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, भक्ति आदि की संस्कार रूप में परिणति हुई है। यहाँ के त्योहारों में गोवर्धन पूजा के गीत, होली के गीत एवं कुआँ पूजन के गीत आदि का अपना विशिष्ट स्थान है तथा माँगलिक कार्यों में लोक-देवताओं का अधिक महत्व है। किसी भी शुभ कार्य को करते समय अपने लोक-देवता, लाला हरदौल, दूल्हादेव आदि को याद करते हैं। जैसे— विवाह संस्कार के समय प्रथम निमन्त्रण लोक-देवता लाला हरदौल को दिया जाता है। बुन्देलखण्ड में ‘सती माता’ की पूजा अधिक लोकप्रिय है। यहाँ के गाँवों में सती के चौरे बने हैं। त्याग-बलिदान के कारण महान नारियों ने भी देवीवर्ग

में स्थान पा लिया है। यहाँ के ग्रामीण इलाके में न जाने कितनी लोक-देवी और देवता हैं, जिनकी गणना करना सम्भव नहीं है। “विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-उपासना बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति की आत्मा है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे ये देवी-देवता बुन्देलखण्ड की माटी से इतने एकाकार हो गए हैं कि यदि बुन्देली धरा से इन्हें निष्कासित कर दिया जाए, तो यहाँ की लोक-संस्कृति श्रीहीन हो जाएगी।”

बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति तीर्थस्थल की दृष्टि से भी काफी समृद्ध है। यहाँ नर्मदा, ताप्ती, केन, बेतवा, चम्बल, टोंस एवं शिप्रा आदि नदियों का अपना विशिष्ट वैभव और महत्व है। बुन्देली संस्कृति में धार्मिक, आध्यात्मिक एवं तीज-त्योहारों के अवसर पर लोगों में सामूहिकता दिखाई देती है। यहाँ के लोकगीतों में एक ओर आध्यात्मिकता दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर इनमें अभावग्रस्त समाज की समस्याएँ भी दिखती हैं। आध्यात्मिक गीतों की एक झलक कुछ इस प्रकार है—

“चल मन वृन्दावन में रइए, जनम लाभ कछु लइए।
जह विहरत नित जुगल माधुरी, तिनके दर्शन पइए।
भूख लगे तब वृजवासिन के, टूक माँग के खइए।
प्यास लगे जमुना जल पीके, सुधा सरस सुख पइए।
‘सूरश्याम’ वंसीवट के, राधे-राधे कइए।”⁶

बुन्देलखण्ड के किसान अपने वृषभ बन्धुओं के साथ श्रम सीकरो की वृष्टि करके वसुधा का नाम वसुन्धरा सार्थक कर देते हैं, जिसके कारण मातृभूमि नित नवीन फसलों की साड़ी पहनकर सुहागिन-सी प्रतीत होती है। यहाँ लोक-संस्कृति प्रकृति से भी गहरा सम्बन्ध रखती है। यहाँ के भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियाँ, फल-फूल, इमारती लकड़ियाँ आदि भरपूर मात्र में पाई जाती हैं, जिससे यहाँ का जन-जीवन अधिक खुशहाल रहता है। इस क्षेत्र में कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ पानी की विकराल समस्या है। यहाँ स्त्रियाँ पानी के लिए गागर को लेकर कोसों दूर पैदल चलती हैं, जब वे पानी के लिए बाहर निकलती हैं तो रास्ते में वे संस्कार गीतों को गाते हुए अपने रास्ते को साध्य बनाती हैं। इस गीत की कुछ झलक इस प्रकार है— ‘सखि गगरी न फूटै, खसम मरि जाय’। वास्तव में यह कोई सामान्य पंक्ति नहीं है, इसमें जो वेदना है, पीड़ा है, उसको महसूस करने की आवश्यकता है।

जनकवि ईसुरी ने बुन्देलखण्ड के किसान की पीड़ा, गाँव के दुःख-दर्द आदि का चित्रण मार्मिक ढंग से किया गया है, जो उपयुक्त उत्पादन न होने पर बड़ी मुश्किल से अपना पेट भरते हैं और इन विषम परिस्थितियों में भी वे संस्कारों से विमुख नहीं होते, न तो किसी के यहाँ चोरी करते हैं और न ही किसी को प्रताड़ित कर उसकी सम्पदा को ही लूटते हैं। किसान भाग्य भरोसे होकर ईश्वर पर सब कुछ छोड़ते हुए कह उठता है—

“निरै राम निबारै, घटी परी सिनसारै।
अगन-फूस लौ बड़ औ जोती, ढार-ढार ढरवारै।
माल गुजारी माँगन चाहत, का दैबी सिरकारै।
नइ दै सकत जिमी कौ पइसा, जिमींदार झकमारै।
‘ईसुर’ इनके कछू बचौ ना, साब के बार उखारै।”

बुन्देली लोकगीत

लोकगीत किसी भी मनुष्य और उसके समाज का अभिन्न अंग होता है। जिसके बिना उसका जीवन रंगहीन हो जाता है। गीत ही मनुष्य के जीवन में खुशहाली के रंग भरता है। लोकगीतों के द्वारा ही जनमानस और उसका पूरा समाज अपना हर्ष, उल्लास, कसक और पीड़ा को व्यक्त करता है। लोकगीतों की यह परम्परा सदियों से जनश्रुति और लिपि के रूप में हमारे समाज में चली आ रही है। इसमें जीवन के सारे रंग देखने को मिलते हैं। इन गीतों का लोकतत्व यह है कि इसकी विशिष्ट धुनें यमुना से लेकर नर्मदा नदी तक और चम्बल से टोंस नदी तक प्रायः एक जैसी गाई जाती हैं। जिसके कारण यहाँ इसकी स्वररागिनी तथा केन्द्रीय भाव एक समान रहते हैं। बुन्देली गीतों का रूप लिखित में कम परन्तु वाचिक परम्परा में अधिक दिखाई पड़ता है। बुन्देली समाज में इन गीतों में देवी-देवताओं के पूजा-विषयक संस्कार गीत, ऋतु-विषयक गीत, शृंगार गीत, श्रमदान गीत, जातियों के गीत, बालक-बालिकाओं के क्रीड़ात्मक उपासना गीत या शौर्य प्रशस्ति गीत होते हैं। इन गीतों से यहाँ के त्योहार भी अलंकृत हुए हैं। जीवन के षोडश संस्कारों को भी इन गीतों ने हृदयंगम किया है और उसे सौन्दर्य का नया रंग देकर अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार यह कहना बिल्कुल सत्य है कि बुन्देली लोक गीत लोक-संस्कृति के दर्पण हैं। यह लोक आस्था और भक्ति का संसार है। महिषमर्दिनी माँ दुर्गा, शारदा, पीताम्बरा पीठ और रानगिर की देवी यहाँ की अधिष्ठात्री देवी हैं।

बुन्देलखण्ड में कार्तिक स्नान पर्व और नवरात्र में महिलाएँ राम-कृष्ण और माँ दुर्गा के चरित्र विषयक गीत प्रभात बेला में झुंडों में निकलकर गाती हैं। बुन्देली भक्ति गीत की यह बानगी सुनते ही बनती है—

“अम्बा, अरे को परो न टारो, सब जग गओ तुम्हारे।
गलिन-गलिन, द्वारन-द्वारन पै भटक-भटक के हारो।”

बुन्देली लोकगीतों में लाला हरदोल के गीत, ईसुरी की फागें आदि का विशेष महत्व है। इसके अलावा बुन्देली लोकगीतों में प्रमुख रूप से लगुन, साँझी, वर की खोज, बनरा-बनरी, बारामासी, गारी, माता पूजन, मटियानी, अरगौ, बीदौरी, अलगोजा, विरहुल, संजूना, हल्दी-तेल के गीत, मेंहदी, मड़वा, भात-चीकट, विनायकी, दूल्हा निकासी, गौरेयाँ-जुगिया, ऊवनी के गीत, द्वारचार-टीका, चढ़ाव के गीत, सुहाग लेने के गीत, भाँवर के लिए दूल्हे का आगमन, कन्यादान, भाँवर गीत, पाँव पखरई का गीत, माड़ें पूजन का गीत, ज्यौनार के गीत, ज्यौनार गारी, विवाह के अन्य अवसरों के गीत, कंकन-बन्द छोड़ना, कुँवर कलेवा के गीत, दायजा सौंपने का गीत, मुँह मड़ई, समधी की विदा, डलिया-विदा लड़की की, गैल रोकने का गीत, बहू-बेटा लेने का गीत, सुहाग रात के गीत, दादरे एवं बुन्देली बन्ना गीत आदि प्रसिद्ध लोकगीत प्रचलित हैं। कुछ बुन्देली लोकगीतों की छटा इस प्रकार देखी जा सकती है—

लगुन के गीतों में

“कोरे-कोरे कागज मँगाओ राजा बाबुल
सो सुध-बुध लगुन लिखाओ हो रम्मा।
सुरन गौ को गोबर मँगाओ राजा बाबुल
सो ढिक धर अँगन लिपाओ हो रम्मा।
गज मोतिन के चौक पुराओ राजा बाबुल।”¹⁰

बारामासी गीतों में

“चैत मास जब लागौ सजनी बिछुरे कुँअर कन्हाई।
कौन उपाय करें जा ब्रज में घर अँगना न सुहाई॥
बैसाख मास जब लागौ सजनी घामें जोर जनायौ।
पलक सेजरियन नींद न आई कान्ह कुँअर घर नाहीं॥
जेठ मास जब लागौ सजनी चारऊँ दिसि पवन झकोरे।
ऐसी पवन उठी जा ब्रज में अंग-अंग कर डोले॥”¹¹

निर्गुण गीत भी बुन्देली गीतों का केन्द्रीय रस है। इन गीतों में

“भज मन राम सिया भगवानें! संग कछु ना जानें!
धन सम्पत् सब माल खजानें, रै जें एई ठिकानें॥
भाई बन्दऔ कुटुम कबीला, जे सब स्वारथ जानें॥
कैंडा कैसौ छोड़ 'ईसुरी', हंसा होत रमानें॥”⁷²

इसी क्रम में बुन्देली लोकगीतों में ईसुरी की फागों का अपना अलग रंग है। इन फागों के माध्यम से जनकवि ईसुरी ने बुन्देलखण्ड के जनजीवन को खुशहाल और जीवन्त बनाया है। इसमें जीवन के विविध रंग सुख-दुःख, भक्ति-दर्शन, गरीबी-अमीरी, लोक-परलोक आदि का रूप समाहित है। इनके फागों में काव्य का यथार्थ विषय प्रेम ही है, जिन्हें ईसुरी ने बहुत ही सुन्दर ढंग से उकेरा है। जैसे—

“तोरे नैना मतवारे/तिन घायल कर डारे
खंजन खरल सैल से पैने/बरछन से अनयारे
तरवारन सैं कमती नइयाँ/इनसैं सबरई हारे
'ईसुर' चले जात गैलारे/टेर बुला कै मारे।”

—ईसुरी, फाग-22

मनुष्य जीवन में भक्ति और अध्यात्म अहम् पहलू है। इसके बिना हम जीवन के अन्तिम सत्य को समझ नहीं सकते हैं। भक्ति-दर्शन एवं अध्यात्म के मर्म की मीमांसा को लेकर भी बुन्देली लोक कवि ईसुरी ने लोकगीतों का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।

बुन्देली लोकगीतों की स्वर सरिता में निमग्न होकर न जाने कितने क्षेत्रों के लोग अपनी अन्तःपीड़ा का शमन करते हैं। खेतों में कठिन परिश्रम करती हुई महिलाएँ लोकगीतों का गायन करते हुए तन्मय हो जाती हैं। बुन्देलखण्ड के लोकगीतों जैसी सरलता, सहजता अन्यत्र दुर्लभ है। जिनकी मधुर ध्वनि से थकान अपने-आप दूर हो जाती है। वातावरण झंकृत होकर झूम उठता है। खेतों की मिट्टी की सुगन्ध एवं लोक-संस्कार उनके गीतों में सुनाई पड़ते हैं। यहाँ का अन्नदाता अपनी धरती की मिट्टी से बेहद प्रेम करता है और वह उसे धरती माँ मानता है। धरती की खुशहाली के लिए वह प्रकृति से भी प्रेम करता है। इस सम्बन्ध में यह कहावत अतिप्रसिद्ध है—

“लाल बरसै ताल भर।
 सेत बरसै खेत भर। कारो बरसैं पारो भर।
 जब उठें धुआँधारे। तब आवैं नदियाँ-नारे।
 माघ सप्तमी ऊजरी बादर मेघ करन्त।
 तो आषाढ़ में भड़डरी घनों मेघ बरसन्त।”¹³

निश्चित रूप से जीवन में लोकगीतों का अपना विशेष महत्व है। लोकगीत धरती के गीत हैं, ये जीवन के गीत हैं, ये विजय के गीत हैं और ये हमारी आशा के गीत हैं। इसके बिना जीवन के रंग का आनन्द सम्भव नहीं हो सकता है।

बुन्देली लोक-नृत्य

लोक-नृत्य किसी भी समाज के जनमानस की उल्लास पूर्ण अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। अक्सर हम देखते हैं कि हर्ष के क्षणों में जब समूह में उमंग की हूक उठती है तो पैर स्वतः ताल-लय के साथ थिरकने लगते हैं। बुन्देलखण्ड में लोक-नृत्यों की सदियों से अपनी एक अलग ही समृद्ध विरासत है। बुन्देली नृत्य कला शैली को सबसे ज्यादा संरक्षण मराठा काल में मिला। नृत्य-संगीत के शौकीन राजा गंगाधर राव ने कला व कलाकारों को विशेष प्रोत्साहन दिया। इसके लिए उन्होंने नृत्यशालाओं की स्थापना कराई, जिनके अस्तित्व अब भी किले व राजा रघुनाथ राव महल में मौजूद हैं। उन्होंने नृत्यों के प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी कराई ताकि बुन्देलखण्ड की प्राचीन कला संस्कृति को भावी पीढ़ी तक पहुँचाया जा सके। उन्होंने नृत्य कला से जुड़े कलाकारों से इतिहास व कला की बारीकियों का संग्रह तैयार कराया था।

बुन्देली लोक-नृत्यों में प्रायः अनेक प्रकार की कोटियाँ देखी जाती हैं, जिसमें सार्वजनिक नृत्य, पारिवारिक नृत्य तथा जातीय या आदिवासियों के लोक-नृत्य इत्यादि। सार्वजनिक नृत्य के अन्तर्गत प्रमुख रूप से राई नृत्य, दीवारी नृत्य, रावला नृत्य, ढिमरयाई, जवारा नृत्य, सैरा नृत्य आदि हैं।

बुन्देली का राई नृत्य— बुन्देलखण्ड का राई नृत्य एक लोकप्रिय प्रसिद्ध नृत्य है, जो उत्सवों जैसे विवाह, पुत्रजन्म आदि के अवसर पर किया जाता है। राई नृत्य प्रमुख रूप से बेड़िनी जाति का नृत्य है। झिंझिया क्वार माह की पूर्णिमा को टेसू के अवसर पर कुंवारी बालिकाओं से लेकर वृद्ध महिलाओं तक के द्वारा नृत्य किया जाता है। बुन्देलखण्ड के अशोकनगर जिले के करीला मेले में राई नृत्य का आयोजन सामूहिक रूप से किया जाता है। यहाँ पर लोग

अपनी मन्त पूर्ण होने पर देवी के मन्दिर के समक्ष लगे मेले में राई नृत्य कराते हैं। यह राई का धार्मिक स्वरूप है। राई नृत्य के केन्द्र में एक नर्तकी होती है, जिसे स्थानीय बोली में बेड़नी कहा जाता है। राई नृत्य की गति देने का कार्य एक मृदंगवादक पुरुष द्वारा किया जाता है। राई नृत्य की एक विशेषता यह भी है कि इस नृत्य के विश्राम की स्थिति में स्वाँग नामक लोकनाट्य भी किया जाता है, जो लोगों को हँसाने का कार्य करता है। विश्राम के उपरान्त पुनः राई नृत्य प्रारम्भ किया जाता है। अन्य लोक-नृत्यों में जो बात प्रायः नहीं पाई जाती है वह है राई में पाई जाने वाली तीव्र गति, तत्कालीन काव्य-रचना और अद्वितीय लोक-संगीत रूप झलकता है। इस नृत्य में वाद्ययन्त्र के तौर पर मृदंग का प्रयोग किया जाता है। इस नृत्य को पुत्र जन्म पर प्रायः वैश्य महाजनों के यहाँ पर भी आयोजित किया जाता है। स्त्रियाँ हाथों, पैरों और कमर की विशेष मुद्राओं में नृत्य करती हैं। स्त्री नर्तकियों की वेश-भूषा व गहने परम्परागत होते हैं। पुरुष धोती, बाना, साफा और पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचते हैं तथा राई नृत्य के गीत शृंगारपरक होते हैं। इस नृत्य की खासियत यह है कि देखने वाले भी इसकी धुन पर नाच उठते हैं। इस गीत का रंग इस प्रकार है— 'दुर लगे असाढ़ खबर नै लई हरि मोरी।/दादुर बोले पपीरा, मधुबन बोली मोर।/श्याम श्याम कह टेरियो चित है मोरी ओर।/खबर नै लई हरि मोरी।।'

बधाई नृत्य— बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जन्म, विवाह और त्योहारों के अवसरों पर 'बधाई नृत्य' लोकप्रिय है। इसमें संगीत वाद्ययन्त्र की धुनों पर महिलाएँ और पुरुष सुन्दर ढंग से नृत्य करते हैं। नर्तकों की कोमल और कलाबाज हरकतें और उनके रंगीन पोशाक दर्शकों को चकित कर देते हैं। यह नृत्य यहाँ की संस्कृति को नया रंग देता है। प्रत्येक शुभ अवसरों पर इस बधाई नृत्य का मंचन अवश्य होता है। इस नृत्य को देखकर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में नयी ऊर्जा और संवेदना बहने लगती है। यह नृत्य सहज ही सभी लोगों को आकर्षित कर लेता है।

दीवारी नृत्य— बुन्देलखण्ड का दीवारी नृत्य समूचे देश में अद्वितीय है। इसमें गोवंश की सुरक्षा, संरक्षण, संवर्द्धन, पालन के संकल्प का इस दिन कठिन व्रत लिया जाता है। पौराणिक किंवदन्तियों से जुड़ी धार्मिक परम्पराओं के परिवेश में पूरे बुन्देलखण्ड में दीपमालिका पर्व पर दीवारी गायन-नृत्य और मौन चराने की अनूठी परम्परा देखते ही बनती है। बुन्देलखण्ड का दीवारी पाई डंडा नृत्य नटवर भेषधारी भगवान श्री कृष्ण की लीला पर केन्द्रित नृत्य

है। दीवारी नृत्य में हाथ में डंडे लिये रहते हैं, कमर में घुँघरू बाँधे रहते हैं तथा टेर के साथ गाते हैं। नृत्य ढोलक तथा नगड़िया के साथ समूह में होते हैं। यह भगवान श्री कृष्ण के गाय चराने के समय की यदुवंशीय युद्ध-कला का परिचायक है। भाद्रपद की पंचमी से पौष-माघ माह की मकर संक्रान्ति तक यह नृत्य होता है। इसमें नर्तक समूह में लाठी चलाने की युद्ध-कला, आत्मरक्षा हेतु वीरता प्रदर्शन, आग के गोले से निकलना, सजे हुए वेश में अपनी युद्ध-कला का नाचते हुए कौशल के साथ मंचन ही इसका आकर्षण है। नृत्य के समय आकर्षक वेश-भूषा में लाल फुलरा गुल बन्द, पाँव में घुँघरू, सर में पगड़ी या साफी बाँधकर छोटे-छोटे डंडे, लाठी से नाचना होता है। मूलतः यह नृत्य बुन्देली शौर्य को प्रमाणित करता है। इस गीत का एक रंग इस प्रकार है— ‘एक पेड़ मथुरा जमों, डार गई जगन्नाथ रे/फूल दो द्वारका, फल लागे बद्रीनाथ रे॥’

सैरा नृत्य— बुन्देलखण्ड की लोक-नृत्य कला-शैली खासी समृद्ध है। यहाँ के राई व सेरा नृत्य ने दुनिया के कई देशों में अपनी पहचान बनाई है। इसके अलावा भी क्षेत्र में कई लोक-नृत्य प्रचलित हैं, जो विभिन्न समाजों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यह यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह व त्योहारों के अवसर पर देखने को मिल जाते हैं। कुछ नृत्य रबी एवं खरीफ की बुआई के समय किए जाते हैं। एक गीत की छटा इस प्रकार है— ‘चंचल लुगइया रे, अरे हरवाय की हाँ हाँ/चंचल लुगइया अरे हरवाय की/सीकन कजरा देय रे/ मोरे बखर के अरे भोंदू सो गय/ये ऊको जीरा लहरियाँ लेय।’

ढीमरयाई नृत्य— यह ढीमर समाज का लोक-नृत्य है, जिसमें जीवन और समाज का अनूठा रंग समाया हुआ दिखाई पड़ता है। इस नृत्य को अक्सर ढीमर जाति द्वारा विवाह के अवसर पर पुरुष तथा महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह बुन्देली वाद्ययन्त्र खँजड़ी, चमीटा, लोटा, घड़ा व ढपली की धुन पर किया जाता है। इस गीत की एक बानगी यह है कि ‘कहाँ बिलमा लई थी राजा दुपहरिया।/फाँस ल्याय राजा जो सोने मछरिया।/आज मोरे जी में लगी पिया ऐंसी॥’

इसी प्रकार ‘कछियाई नृत्य’ कुशवाहा समाज के लोग झींगा, मँजीरा, सारंगी, अलगोजा वाद्य-यन्त्र पर करते हैं। ‘रावला नृत्य’ में स्त्री और पुरुष रमतूला, सारंगी के साथ गाते-नाचते हैं। जिसकी धुन हृदय को झंकृत कर देती है। यह यहाँ के लोक का बहुत की मार्मिक और मन को मोहित कर देने

वाला नृत्य है। 'मोनिया नृत्य' गोपालक समाज द्वारा मौन व्रत धारण कर हाथों में लाठी लेकर किया जाता है। यह नृत्य भी अपने समाज की संस्कृति को उद्घाटित करते हुए उसके मर्म को अभिव्यक्त करता है। इसके अलावा बुन्देलखण्ड में जुलाहा समाज द्वारा किया जाने वाला **कबीर पन्थी नृत्य**, शादी में बारात जाने के बाद महिलाओं द्वारा किया जाने वाला **जुगिया नृत्य**, नवरात्र में जवारों की बुवाई पर होने वाला **जवारा नृत्य**, धोबी समाज के **रावला नृत्य** के साथ **ढोला-मारू नृत्य**, **दिलदिल घोड़ी नृत्य**, **सपेरा नृत्य** आदि भी क्षेत्र में लोकप्रिय हैं। बुन्देलखण्ड का **भगोरिया नृत्य** अपनी विलक्षण लय और **डाँडरियाँ नृत्य** के माध्यम से बुन्देलखण्ड की बैगा आदिवासी जनजाति की साँस्कृतिक पहचान बन गया है। बैगा के पारम्परिक लोकगीतों और नृत्य के साथ दशहरा त्योहार की उल्लास-भरी शुरुआत होती है। दशहरा त्योहार के अवसर पर बैगा समुदाय के विवाह योग्य पुरुष एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हैं, जहाँ दूसरे गाँव की युवा लड़कियाँ अपने गायन और डाँडरियाँ नृत्य के साथ उनका परम्परागत तरीके से स्वागत करती हैं। यह एक दिलचस्प रिवाज है, जिसमें बैगा लड़की अपनी पसन्द के युवा पुरुष का चयन कर उससे शादी की अनुमति देती है। इसमें शामिल गीत और नृत्य, इस रिवाज द्वारा प्रेरित होते हैं।

अन्य लोक-नृत्यों में जातीय समाज काछी, धोबी, चमार, गड़रिया, मेहतर, कोरी आदि लोग अपनी परम्परा के अनुसार स्त्री-पुरुष अपने विशेष वेश-भूषा के साथ नृत्य करते हैं। पारिवारिक नृत्य में चंगेल या **कलश नृत्य** शिशु जन्म के समय बुआ द्वारा लाए गए बधाई के साथ किया जाता है। लाकौर या **रास बधावा नृत्य** विवाह में भाँवर के पूरी होने के पश्चात् कन्या पक्ष की महिलाओं द्वारा जब वह डेरों पर जाती हैं, तो बहू का टीका पूजन, वर पक्ष के रिश्तेदारों द्वारा किया जाता है। बालिकाएँ व महिलाएँ बन्नी गाते हुए नृत्य करती हैं। इसी प्रकार बहू उतराई का नृत्य विवाहोपरान्त वर पक्ष के निवास में होता है। सगुन चिरैया गीत गाए जाते हैं सास, देवरानी, जेठानी, बुआ आदि उल्लास में नाचती हैं।

यह कहना बिल्कुल सत्य है कि लोकगीत का नृत्य से गहरा सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में कहें तो ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और वे एक-दूसरे के बिना अधूरे रहते हैं। इस अर्थ में नृत्य का आयोजन करना हो तो गीत और संगीत की आवश्यकता तो होती ही है, जिसके द्वारा शारीरिक व मानसिक हाव-भाव के माध्यम से गीत के बोलों के अर्थ अभिव्यक्त कर दर्शकों

व श्रोताओं का मनोरंजन कर आनन्दित व आकर्षित कर सकें।

निष्कर्षतः बुन्देलखण्ड माटी में निहित लोक-संस्कृति, लोकगीत और लोक-नृत्य के विविध रंग आज भी बरकरार हैं। बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकगीत बुन्देलीजन के संस्कारों, आचार-विचारों, उत्सवों, आध्यात्मिक विचारों का परिचय तो देते ही हैं, साथ ही इनके माध्यम से सामाजिक जीवन की विविधता का भी साक्षात्कार होता है। इनका लालित्य, सौष्ठव और भाव-प्रवणता दर्शनीय है। बुन्देलखण्ड का मानवीय पक्ष अधिक परिष्कृत है, जिसमें परोपकार, सहिष्णुता, दया, करुणा, ममता, धैर्य, त्याग और सन्तोष की प्रवृत्ति भरपूर मात्रा में विद्यमान दिखाई देती है। बुन्देली संस्कृति का बाह्य स्वरूप रहन-सहन, वेश-भूषा, उत्सव, रीति-रिवाज, संस्कार और कलाओं को तथा इसका आन्तरिक स्वरूप भक्ति, दर्शन और धर्म को प्रकट करता है। बुन्देली संस्कृति की सबसे बड़ी खूबसूरती यह है कि यह हमारी पुरातन सभ्यता और संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।' की तरह ही मनुष्य और उसके लोक में मंगल-भावना की राह पर सदियों से चलती नजर आती है। इस प्रकार बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति, लोकगीत और लोकसंगीत आदि के विविध रंगों को जितना रेखांकन किया जाए वह कम ही है। जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं है, जो इसके कैनवास से अछूता हो।

सन्दर्भ

1. लोक-संस्कृति की रूपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण : 2014, पृ. 17।
2. साहित्य : समकालीन सरोकार, डॉ. रंजना मिश्रा, अनुज्ञा बुक्स, 1/10206, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 2015, पृ. 110।
3. बुन्देलखण्ड में स्त्री, सम्पादक- प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण : 2012, पृ. 181।
4. बुन्देलखण्ड : संस्कृति एवं साहित्य, सम्पादक- भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, जनवरी-दिसम्बर संयुक्तांक-2014, पृ. 140।
5. बुन्देली काव्य-परम्परा, डॉ. बलभद्र तिवारी, प्रकाशक : बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश, संस्करण : 1993, पृ. 74।
6. kavitakosh.org/bundeligeet.
7. kavitakosh.org/bundeligeet.

8. ईसुरी की फागें, सम्पादन एवं अनुवाद, घनश्याम कश्यप, परिमल प्रकाशन-17 एम.आई.जी. बाघम्बरी आवास योजना अल्लापुर, इलाहाबाद 211006, प्रथम संस्करण 1983, पृ. 18।
9. बुन्देली काव्य-परम्परा, डॉ. बलभद्र तिवारी, बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण : 1993, पृ. 247।

पता— अतिथि शिक्षक, हिन्दी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर- 470003, मध्यप्रदेश।
मोबाइल- 8853309388